

प्रवचन-१०५, श्लोक-१३३, गाथा-९८-९९, गुरुवार, मागशर कृष्ण १०, दिनांक १३-१२-१९७९

नियमसार, ९८ गाथा, इसकी टीका। टीका की एक-दो लाईन तो आ गयी है। शुभाशुभ मन-वचन-काय सम्बन्धी... मन-वचन और काया के सम्बन्ध से जितने शुभाशुभ योग हो। कम्पन-योग हो, उसे यहाँ कर्म कहा जाता है। कर्म अर्थात् कार्य। उससे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है;... आत्मा में मन-वचन और काया, वह तो जड़-पर है और उनके सम्बन्ध में जो योग का कम्पन होता है, वह प्रकृति और प्रदेशबन्ध का कारण है। आगे कहेंगे कि इसलिए वह हेय है और चार कषायों से स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है;... चार कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ। राग के दो प्रकार : माया और लोभ। द्वेष के दो प्रकार : क्रोध और मान। लोभ है, वह राग है। चाहे तो प्रशस्तराग हो या अप्रशस्त। देव-गुरु-शास्त्र सम्बन्धी का राग हो या स्त्री, कुटुम्ब सम्बन्धी का राग हो, वह अशुभ है और यह (देवादि का) शुभ है। ये दोनों कर्म की स्थिति और अनुभाग का कारण है। आहाहा! है ?

चार कषायों से... शुभ हो या अशुभ हो, उससे कर्म में स्थितिबन्ध... पड़ता है और अनुभागबन्ध होता है; इन चार बन्धोंरहित... आत्मा चार बन्धों से रहित है। जो उसका द्रव्यस्वरूप, जो तत्त्व सत्ता है, उसका त्रिकाली तत्त्व अस्तित्व जो है, वह तो अबन्ध है। द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाली सत्ता, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुणसम्पन्न जो द्रव्य की सत्ता का अस्तित्व है, वह द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध और निरावरण है। वह बन्धरहित है। वस्तु है, वह बन्धरहित है और सम्यग्दर्शन का विषय भी बन्धरहित है। आहाहा!

‘जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं’ जो कोई इस आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखता है, बन्धन से कोई प्रकृति और स्थिति अनुभाग, या... से प्रकृति और प्रदेश कोई भी बन्ध उस स्वरूप में नहीं है। ऐसा इसका त्रिकाली ज्ञायक अबन्धस्वरूप जो देखता है, उसने जैनशासन को देखा। आहाहा! साथ में राग और कषाय... राग कहो या कषाय कहो, राग का भाग माया और लोभ। द्वेष का क्रोध और मान। इस कषाय से स्थिति और रस पड़ता है। वह कषाय चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, परन्तु इस बन्ध से तो रहित आत्मा है। द्रव्यबन्ध से तो रहित है। द्रव्यबन्ध अर्थात् आठ कर्म की प्रकृति जड़, अचेतन से तो प्रभु

अन्दर अबद्ध है। उस अजीव के सम्बन्ध में आया भी नहीं। उसकी पर्याय में जो स्थिति -अनुभाग पड़ता है, वह कषाय होती है। शुभ या अशुभराग, वह भी भावबन्ध है। उस भावबन्ध से भी अबन्धस्वरूप भिन्न है। ऐसी बातें हैं।

इस अबद्धस्वरूप को जो देखता है अर्थात् श्रद्धा करता है अर्थात् उसे जानकर मानता है, उसने जैनशासन में जो कहना था, वह माना है। यह जैनशासन वह है। 'पस्सदि जिणसासणं सव्वं' आहाहा! इन चार बन्धोंरहित सदा... सदा शब्द से (आशय) तीनों काल। किसी समय निगोद में भी बन्धवाला द्रव्य था, ऐसा नहीं है। यह सम्यग्दर्शन का विषय जो द्रव्य है, वह तो त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप है। आहाहा! उसे तो बन्ध की स्थिति और रस उसमें कुछ है ही नहीं। उसे दया, दान और तीर्थकर गोत्र का जो भाव है, वह बन्ध। वह भाव, भावबन्ध है; वह भी अबन्धस्वरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई!

इन चार बन्धोंरहित सदा... सदा क्यों रखा है? त्रिकाल। मुक्त होवे, तब निरुपाधिस्वरूप है-ऐसा नहीं है। यह मुक्त होवे तब तो पर्याय में निरुपाधिस्वरूप है। यह तो द्रव्यस्वरूप जो है, वह त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप है। निरुपाधिस्वरूप है, तो पर्याय में-अवस्था में निरुपाधिस्वरूप प्रगट होता है। यह प्राप्त की प्राप्ति है। है, वह मिलता है। है, वह प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा। यह भगवान आत्मा, हों! भगवान हो गये, वे नहीं। अबद्धस्वरूप है। सदा ही-तीनों काल अबद्धस्वरूप है। निगोद में हो या तीर्थकरप्रकृति के उदय में हो, परन्तु उदय तो उन्हें तेरहवें गुणस्थान में आता है। बन्ध में हो, तीर्थकरप्रकृति के बन्ध में हो, परन्तु वह वस्तु तो त्रिकाल अबद्ध है। आहाहा!

षोडशकारणभावना से तीर्थकरगोत्र बँधता है, उस भावबन्ध से रहित वस्तु है। बँधती है, वह तीर्थकरप्रकृति जड़ है, परन्तु वह जिस भाव से निमित्त बँधती है, वह भाव भी अचेतन है। उससे सदा भिन्न है। आहाहा! अब लोगों को यहाँ तक जाना। सूक्ष्म बात है, भाई! परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की आज्ञा का स्वरूप है, वह कोई अलौकिक है। ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। कहीं नहीं है। बहुत निषेध करने जाएँ तो क्या हो? बाकी अस्तिरूप तो इस एक में ही यह है। आहाहा!

सदा निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा... अब सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा विचार करता है कि इस बन्ध से सदारहित निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा, सो मैं हूँ... आहाहा! है? उपाधि है न?

है, वह व्यवहार में जाती है। वस्तु में नहीं है। वस्तु त्रिकाल निरावरण है। अखण्ड एक अविनश्वर... आहाहा! प्रत्यक्षप्रतिभासमय वस्तु पड़ी है। परमपारिणामिक शुद्ध तत्त्वभाव निज द्रव्य, वह सदा निरुपाधिस्वरूप है। आहाहा! यह बात जँचे किस प्रकार? दर्शनशुद्धि की बात पहले है। चारित्र तो बाद में। चारित्र तो चरना। परन्तु किसमें चरना? जो चीज़ ही देखी नहीं, जो चीज़ जानने में आयी नहीं, उस चीज़ में रमना किस प्रकार? रमना, वह चारित्र है परन्तु चीज़ क्या है, वह दृष्टि में आयी नहीं, तो वस्तु ऐसी है कि सदा निरुपाधिस्वरूप है। आहाहा!

वह आत्मा, सो मैं हूँ... आहाहा! यह आत्मा, वह मैं हूँ। ऐसी सम्यक्ज्ञानी को... सम्यग्ज्ञानी को चौथे गुणस्थान से। और कितने ही सम्यग्ज्ञान चौथे गुणस्थान में नहीं और सातवें (गुणस्थान) में कहते हैं। दृष्टि बदल गयी, वहाँ सम्यग्ज्ञान हुआ। वहाँ सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए। आहाहा! बीच में भक्ति का, पूजा का राग आता है परन्तु उसकी भावना नहीं करना। उसे जानकर हेय जानना और भावना इसकी (स्वभाव की) करना। सम्यग्ज्ञानी को, सच्चे ज्ञानी को निरन्तर—अन्तर पड़े बिना सदा निरुपाधिस्वरूप भगवान आत्मा की भावना - एकाग्रता करनी चाहिए। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इसे कहाँ जाना।

त्रिकाली निरुपाधिस्वरूप भगवान, जिसे स्थिति-रस का भाव ही नहीं। जिसमें विकल्प भाव तीर्थकरगोत्र बँधे ऐसा भाव, वह भाव भावबन्ध है, उससे भी रहित वह निरुपाधिस्वरूप है। आहाहा! ऐसा सदा निरुपाधिस्वरूप भगवान आत्मा, उसे धर्मी जीव को, सम्यग्ज्ञानी जीव को यह निरन्तर भावना करनी चाहिए। कि यह निरुपाधिस्वरूप है, वह मैं हूँ। उपाधि, रागादि आते हैं, वह मैं नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है, उसे कथनमात्र-कहनेमात्र कहने में आता है। यह वस्तु मैं नहीं हूँ। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, वह मैं नहीं हूँ। ऐसी सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए। आहाहा!

सवरे वह आया था। षट्कारक में भेद और नित्य-अनित्य धर्म के भेद और ज्ञान-दर्शन आदि गुण में भेद। यह अर्थकार-टीकाकार राजमल कहते हैं, वह तो कथनमात्र-वचनमात्र है। वस्तु में कोई वह भेद है नहीं। व्यवहारनय को सातवीं गाथा में कथनमात्र

कहा था न ? इसी प्रकार यहाँ कथनमात्र कहा है। आहाहा ! वह तो कथनमात्र भेद है। वस्तु तो अखण्ड आनन्द प्रभु, षट्कारक के भेद विकार से तो भिन्न; धर्म जो कहलाता है अस्तित्वपना, उससे तो भिन्न परन्तु निर्मल पर्याय के षट्कारक, निर्मल वीतरागी धर्म की दशा, वह निर्मल कर्ता-कर्म आदि जो पर्याय है, उससे भी प्रभु तो भिन्न है। आहाहा ! क्योंकि द्रव्यस्वभाव सम्यग्दर्शन का जो विषय है, उसमें सम्यग्दर्शन पर्याय विषय में नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय भी सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं है। आहाहा ! ऐसा कठिन पड़ता है। क्या हो ? अनादि से जो दूसरे मार्ग में चढ़ जाये। अनादि से दूसरे मार्ग में चढ़ गया। मार्ग पड़ा रहा। वीतराग पन्थ जो है, वह पड़ा रहा। वीतरागभाव से अन्दर में जाया जाता है, वह पन्थ पड़ा रहा। राग, पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति ऐसे भाव से यह होगा, ऐसा मानकर वहाँ रुक गया। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं **सदा निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा...** वही आत्मा, ऐसा। वह आत्मा ही यह है। बाकी उपाधि, आदि, राग-द्वेष और पुण्यतत्त्व, भावतत्त्व भिन्न तत्त्व है। आहाहा ! वह **आत्मा सो मैं हूँ...** आहाहा ! **ऐसी...** धर्मी। धर्म की शुरुआत करनेवाले को **सम्यक्ज्ञानी को...** धर्मी जीव कहो या सम्यग्ज्ञानी कहो। ऐसा नहीं की सम्यग्ज्ञान अर्थात् कोई चीज़ ऊँचा सम्यग्ज्ञानी अर्थात् सातवें, आठवें गुणस्थान में ऊँचा। धर्म चौथे से होता है और सम्यग्ज्ञान सातवें में हो, ऐसा नहीं है। धर्म और सम्यग्ज्ञान सब एक ही समय में वहाँ चौथे गुणस्थान में है। आहाहा ! **ऐसी सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए।** भावना का अर्थ विकल्प नहीं है। भावना का अर्थ किया न, वह श्रावक का आता है न ?

प्रवचनसार में जयसेनाचार्य की टीका में श्रावक-समकिति सामायिक करे, तब उसे शुद्धोपयोग आ जाता है। वह शुद्धोपयोग आवे, तब उसे अल्प शुद्धोपयोग की भावना, ऐसा शब्द पड़ा है। भावना शब्द से विकल्प और चिन्ता नहीं। शुद्धोपयोग की एकाग्रता आ जाती है, तो सामायिक में गृहस्थ को दो कषाय का अभाव तो निरन्तर वर्तता है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन और जिसे सच्चा श्रावक कहते हैं, उसे दो कषाय (चौकड़ी) का तो निरन्तर अभाव वर्तता है और इसलिए तो उसमें उसे... आहाहा ! निरन्तर एकाग्रता तो इतनी वर्तती ही है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश वहाँ निर्मल शुद्ध निरुपाधि पदार्थ में वर्तता है। ऐसा नहीं कि यह सब सातवें गुणस्थान में होता है और अमुक होता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं।

श्लोक-१३३

[ अब इस ९८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ]

( मंदाक्रांता )

प्रेक्षावद्भिः सहज-परमानन्द-चिद्रूप-मेकं,  
सङ्ग्राह्यं तैर्निरुपममिदं मुक्तिसाम्राज्यमूलम् ।  
तस्मादुच्चैस्त्वमपि च सखे मद्बचःसारमस्मिन्,  
श्रुत्वा शीघ्रं कुरु तव मतिं चिच्चमत्कारमात्रे ॥१३३॥

( वीरछन्द )

बुद्धिमान द्वारा है निरुपम परमानन्द सहज चिद्रूप ।  
मात्र एक संग्राह्य यही जो महामुक्ति साम्राज्य सुमूल ॥  
इसलिए हे मित्र! सुनो तुम मेरे इन वचनों का सार ।  
इस चैतन्य चमत्कार प्रति शीघ्र उग्र निज वृत्ति धार ॥१३३॥

[ श्लोकार्थः ] जो मुक्तिसाम्राज्य का मूल है, ऐसे इस निरुपम, सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप को ( -चैतन्य के स्वरूप को ) एक को बुद्धिमान पुरुषों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है; इसलिए, मित्र! तू भी मेरे उपदेश के सार को सुनकर, तुरन्त ही उग्ररूप से इस चैतन्यचमत्कारमात्र के प्रति अपनी वृत्ति कर ॥१३३॥

श्लोक -१३३ पर प्रवचन

[ अब इस ९८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ]

प्रेक्षावद्भिः सहज-परमानन्द-चिद्रूप-मेकं,  
सङ्ग्राह्यं तैर्निरुपममिदं मुक्तिसाम्राज्यमूलम् ।  
तस्मादुच्चैस्त्वमपि च सखे मद्बचःसारमस्मिन्,  
श्रुत्वा शीघ्रं कुरु तव मतिं चिच्चमत्कारमात्रे ॥१३३॥

आहाहा! यह 'सखे' के लिये देखा, भाई! इसमें 'सखे' शब्द आया है न? इसके लिये भावपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने भाषा में हे महाजस! हे महामुनिवर! ऐसी भाषा में है। आहाहा! बापू! पूर्व में द्रव्यलिंग धारण करके, दिगम्बर साधु हुआ, द्रव्यलिंग अट्टाईस मूलगुण पालन किये, परन्तु फिर मरकर चार गति में भटका, बापू! वह द्रव्यलिंग धारण किया, पश्चात् जन्म-मरण किये बिना एक जगह खाली नहीं रखी। इतनी बार तो साधुपने के द्रव्यलिंग धारण किये हैं। आहाहा! अष्टपाहुड़, भावपाहुड़ में है। हे महाजस! ऐसा शब्द पड़ा है। हे मुनिवर! हे महाजस! आहाहा! हे मित्र! वह यहाँ आता है। उसमें भी मित्र आता है। कुन्दकुन्दाचार्य के तो यह सब पथानुगामी। आहाहा!

[ श्लोकार्थः ] जो मुक्तिसाम्राज्य का मूल है... यहाँ है और वह आया न? 'तस्मादुच्चैस्त्वमपि च सखे मद्वचःसारमस्मिन्, श्रुत्वा शीघ्रं कुरु तव मतिं चिच्चमत्कारमात्रे।' आहाहा! जो मुक्तिसाम्राज्य का मूल है.. मोक्षरूपी मार्ग साम्राज्य... आहाहा! ऐसे इस निरुपम, सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप... निरुपम—उपमारहित भगवान। जिसे उपमा नहीं, ऐसा परमात्मतत्त्व अन्दर पड़ा है। जो परमात्मा हुए, वे सब परमात्मशक्ति थी, उसमें से हुए हैं। अन्दर में प्राप्त की प्राप्ति है। थी, उसमें से आयी। आहाहा! परमात्मपद कहीं बाहर से नहीं आता। स्वयं पाँचों पदस्वरूप है। भगवान आत्मा देह से भिन्न, राग से भिन्न, पाँच पदस्वरूप प्रभु है। आहाहा! है, उसमें से आकर बाहर आता है। आहाहा! ऐसी बातें।

यहाँ यह कहते हैं मुक्तिसाम्राज्य का मूल... मुक्तिरूपी बड़ा राज। आहाहा! साम्राज्य कहा यह नहीं? एक बार वाँकानेर गये थे न? वाँकानेर के दरबार, उनकी रानी होशियार है न? उस दिन आ नहीं सके। बहुत वर्ष हुए। बाहर जंगल में गये थे। उन्हें खबर पड़ी कि महाराज हमारे बँगले के पास जंगल में—दिशा को आते हैं। हमारे दर्शन करना है, मैं आ सकूँ ऐसा नहीं है। बड़ा... कुछ था। उनके व्यक्ति के साथ कहलवाया। महाराज यहाँ आते हैं तो हमारे बँगले में दर्शन देने आवें, ऐसी हमारी भावना है। हम गये, फिर रानी ने बगल में ठेठ वहाँ तक किया, क्या कहलाता है? रंगोली। रंगोली की थी। दरबार बाहर आकर खड़े थे। अन्दर आकर बैठे, दस मिनिट बात की। कहा - यह राज नहीं। राज तो आत्मा का साम्राज्य यह तो अन्तर के गुण के धनी का साम्राज्य है, कहा। यह साम्राज्य आया न?

कहा यह राज नहीं, दरबार ! रानी होशियार थी । बहुत करोड़ रुपये इकट्ठे किये । व्यापार-धन्धा वह करती थी । यह साम्राज्य नहीं, यह राज नहीं । करोड़ों की आमदनी हो या अरबों की आमदनी हो, वह भी राज नहीं । साम्राज्य तो यहाँ है । अनन्त गुण का धनी प्रभु अन्दर, वह साम्राज्य अन्दर बड़ा बादशाह विराजता है । उसे पहिचानो और उसे मानो, वह साम्राज्य है । वे बेचारे हाँ करे, बेचारे । क्या करे ? हमारे पास कहाँ कुछ लेना-देना ? दरबार हो या गरीब व्यक्ति हो । बेचारा सुनता था । दस मिनट बैठे । सवेरे की बात थी । व्याख्यान से पहले । एक हजार रुपये रखे । दस मिनट बात सुनी । एक हजार ज्ञान खाते में दिये । अपने डाला है । नहीं ? इनने एक जगह डाला है ।

कहा, यह साम्राज्य नहीं । बड़ा वाँकानेर का राजा है और उसके हम राजा हैं, जामनगर, हों ! वाँकानेर नहीं । जामनगर । जामनगर के दिग्विजय और रानी । वह यह साम्राज्य नहीं, भाई ! यह तो नाशवान वस्तु है । यह साथ नहीं आयेगी और यहाँ भी तेरी नहीं है । साम्राज्य तो यहाँ अन्दर है, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, वह साम्राज्य है । सुनते थे, प्रेम से सुनते थे । उन्हें खबर है कि मुझे कहाँ कुछ दरकार है ? बादशाह हो या गरीब हो । यहाँ कहाँ चन्दा-बन्दा कराना है तो मक्खन लगाये । यहाँ मक्खन-बक्खन तो है नहीं । बेचारे ने दस मिनट सुना । हुकम किया कि ज्ञान खाते में हजार रुपये दो, ज्ञानखाते में । यह साम्राज्य । उसका बादशाह हो आत्मा... आहाहा !

जो मुक्तिसाम्राज्य का मूल है, ऐसे इस निरुपम,... आहाहा ! जिसे कोई उपमा नहीं । उसकी उपमा उसे है । आहाहा ! सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप को... स्वभाविक परमानन्दरूपी चिद्रूप अर्थात् आत्मा । यह सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप को ( -चैतन्य के स्वरूप को ) एक को बुद्धिमान पुरुषों... आहाहा ! हे चतुर ! दुनिया के चतुर तो दुनिया में भटकनेवाले हैं । दुनिया के चतुर सब करोड़पति, अरबोंपति हो जाये । बातें करने बैठे ऐसे मानो... ओहोहो ! देव के पुत्र उतरे मानो । सब सुने तो आहाहा ! यह तो अरबपति व्यक्ति है । यह बोले तो मानो... यह दुनिया का चतुर ! यह संसार के चतुर संसार में गहरे भटकने जानेवाले हैं । यहाँ कहीं हमारे पास दूसरा कुछ नहीं मिलता । मक्खन नहीं मिलता । यह वस्तु है । जँचे, उसे जँचाओ ।

यहाँ तो आचार्य स्वयं मुनिराज ऐसा कहते हैं । आहाहा ! एक को बुद्धिमान पुरुषों

को... देखा ? है न ? आहाहा ! 'प्रेक्षावद्धिः' यहाँ से निकाला न ! एक को बुद्धिमान पुरुषों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है ;... आहाहा ! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु ! सब भगवान है । देहरहित, रागरहित सब आत्मा प्रभु है, उस भगवान प्रभु को भज । आहाहा ! दूसरा सब व्यवहार-प्यवहार एक ओर रख दे, कहते हैं । आहाहा ! वही बुद्धिमान पुरुषों को सम्यक् प्रकार से... सम्यक् प्रकार से क्यों कहा ? कि जान लिया, जानने में आया, वह नहीं । अन्दर में एकाग्र कर, वह चतुर पुरुष ने जाना कहलाता है । शास्त्र का जानपना करके बात ख्याल में आयी, ऐसी बात तो ग्यारह अंग पढ़ गया है । आहाहा ! ग्यारह अंग में यह बात आयी थी । वह तो अनन्त बार बन गया है, बापू ! प्रभु ! तू अन्दर में गया नहीं । जहाँ तू है, वहाँ गया नहीं । जहाँ तू नहीं, वहाँ तूने क्रीड़ा की है । अनादि की पर्याय में, पुण्य-पाप और दया, दान विकल्पभाव में क्रीड़ा की है । आहाहा !

उसमें आता है न ? वहाँ आया था । वह 'राणपुर' नहीं ? राणा ! खेल छोड़ शत्रु आया किनारे । राणपुर है न ? उस ओर मन्दिर के किनारे गाँव है । राणा ! खेल छोड़, वह खेल करता था । बाजी खेलता था । उसमें उसके ऊपर राजा ने सेना लेकर चढ़ाई की । उसमें एक बारोठ आया । राणा ! राजपूत ! यह खेल रख, वह सेना किनारे आयी । गाँव का नाम 'किनारो' गाँव का नाम किनारो । राणपुर के साथ में है । नदी के किनारे । यह खेल छोड़ चतुर ! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, हे चतुर ! आहाहा ! यह तेरे राग के खेल छोड़, प्रभु ! आहाहा ! वापस मित्र कहते हैं, हों ! आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य तो भावपाहुड़ में द्रव्यलिंगियों को भी हे महाजस ! हे महामुनि ! तू यह द्रव्यलिंगी में पड़ा है, वह भी भाव में नहीं आयेगा तो भटक मरेगा । आहाहा ! बोले महाजस । महाजस बाहर आया । इतना दिगम्बर नग्नपना, अट्टाईस मूलगुण लिये, अट्टाईस मूलगुण निर्दोष, हों ! उनके लिये बनाया हुआ आहार-पानी प्राण जाए तो भी नहीं लेते, इसका नाम द्रव्यलिंग कहा जाता है । उनके लिये बनाया हुआ आहार-पानी चावल या एक बूँद भी नहीं लेते । आहाहा ! यह कहते हैं हे महाजस ! वह इतने द्रव्यलिंग धारण किये, प्रभु ! तूने द्रव्यलिंग, पश्चात् जन्म-मरण किये बिना यह जमीन खाली नहीं रखी । आहाहा !

द्रव्यलिंगपना, जैन का दिगम्बर साधु, नग्न, अट्टाईस मूलगुण, यह तो अनन्त बार लिये हैं, बापू ! यह कोई वस्तु नहीं है । आहाहा ! अन्दर आत्मा आनन्दमूर्ति निरुपाधिस्वरूप



का अनुभव सम्यग्दर्शन और ज्ञान-अनुभव, वह मार्ग है। आहाहा! ऐसे तो बहुत दोहे किये हैं। वह देखता था। यह मित्र है न? वहाँ कितने शब्द प्रयोग किये हैं? यह थोड़े पृष्ठ बाकी रह गये। वहाँ उसे हे मित्र! ऐसा भी कहा है। साधु को कुन्दकुन्दाचार्य ने हे मित्र! यह द्रव्यलिंग से तुझे कुछ नहीं होगा। आहाहा! इस राग के क्लेश में दुःखी होगा। अन्दर जिनभावना भा। ऐसा भावपाहुड़ में पाठ है। जिनभावना का अर्थ वीतरागी भावना भा। राग की भावना, द्रव्यलिंग की भावना तो राग की है। पंच महाव्रत और पाँच समिति और गुप्ति, अट्टाईस मूलगुण व्यवहार, यह तो सब राग की भावना है। यह नहीं। जिनभावना भा। ऐसा भावपाहुड़ में है। अष्टपाहुड़ में है। आहाहा!

प्रभु! वीतरागस्वरूप है। उस वीतरागस्वरूप की वीतराग भावना भा। उससे वीतरागता प्रगट होगी। ये तीनों वीतरागता। कौन तीनों? एक तो वस्तु स्वयं निरुपाधि वीतरागस्वरूप; उसकी भावना वीतरागभाव से भायी जाती है। राग से नहीं। उसके फल में वीतराग, वह केवलज्ञान प्रगट होता है, वह वीतराग प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा है। नये लोगों को कठिन लगता है। कभी सुना नहीं हो, उसे ऐसा कि यह क्या होगा? यह नया निकाला होगा? यह कहाँ नयी पुस्तक है? यह तो हजारों वर्ष पहले की है। दो हजार वर्ष पहले की कुन्दकुन्दाचार्य की बनायी हुई है। सोनगढ़ की नहीं। कोई ऐसा कहे कि सोनगढ़वाले ऐसा लिखते हैं। यह किसका है? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का है। पश्चात् पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की है। वे मुनिराज हैं, सच्चे भावलिंगी हैं। अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करनेवाले हैं, अभी वैमानिक में हैं। यह पद्मप्रभमलधारिदेव, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्यदेव सब वैमानिक में हैं। पुरुष देवरूप से हैं। वहाँ से निकलकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा!

दिगम्बर सन्तों की बलिहारी है, बापू! उनकी दशा, उनकी बात, उनकी कथनशैली दुनिया में शोधने से मिलती नहीं। दूसरों को दुःख लगे, यह बात नहीं प्रभु, हों! ऐसा कहे तब हमारा खोटा? ऐसा रहने दे, प्रभु! यह सच्चा है, यह समझ ले। आहाहा! और वह भी प्रभु! तू भगवान होनेवाला है न? तुझे भगवान होने की बात करते हैं न, प्रभु! आहाहा! तू भगवानस्वरूप है न, प्रभु! तेरा स्वरूप ही वीतराग भगवान परमेश्वरस्वरूप है। समयसार की ३८ गाथा में नहीं आता? अपने परमेश्वर को भूल गया। समयसार की ३८वीं गाथा।

अपने परमेश्वर को भूल गया और पर परमेश्वर की लगायी, भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... लाख बार, करोड़ बार भगवान... भगवान... कर न, वह तो सब राग है। आहाहा! वह जैनधर्म नहीं है। गजब बात है। छोटाभाई! ऐसा कहना था सभा में। आहाहा! भाई कहाँ के हैं? बड़े भाई बैठे हैं वे?

**मुमुक्षु :** कोलकर रतिभाई के भाई हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा, हाँ! रतिभाई के भाई? प्रेम है। प्रेम से सुनते हैं। सुनते हैं प्रेम से। मार्ग ऐसा है, बापू! मार्ग ऐसी चीज़ है। प्रेम से सुनते हैं। मार्ग ऐसा है, भगवान! आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

क्या कहा? यह मुक्ति साम्राज्य का मूल प्रभु आत्मा ऐसे इस निरुपम, सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप को ( -चैतन्य के स्वरूप को ) एक को बुद्धिमान पुरुषों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है;... आहाहा! अनुभव करना योग्य है। सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है;... आहाहा! अकेली बातों में नहीं रखना, ऐसा कहते हैं। अकेले जानपने के भाव की धारणा में न रखना। ऐई! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा! मार्ग ऐसा धन्य भाग्य को बापू! यह बात कान पड़ती है, वह धन्य भाग्य है। ऐसी यह बात है, बापू! आहाहा! कहते हैं, सम्यक् प्रकार से अनुभव करना। जैसा है, उस प्रकार से उसे अनुभव करना। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है, राग से रहित है, वीतरागमूर्ति है, चैतन्य का दल है, आनन्द का सागर है, शक्ति का समूह है, यह अनन्त गुण का गोदाम है। आहाहा! ऐसे एक को ही। आया? एक को, कहा न?

**एक को बुद्धिमान पुरुषों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है; इसलिए, हे मित्र!...** आहाहा! यह मुनिराज मित्ररूप से बुलाते हैं। आत्मारूप से है, भगवान आत्मा है न? अन्दर आत्मा है न? आत्मा मित्र है। बाहर की उपाधि भले हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अन्दर आत्मा जो है, वह मित्र है, साधर्मी है। द्रव्यरूप से जीव को सभी जीव साधर्मी हैं। आहाहा! भगवानस्वरूप तुम हो न, प्रभु! और मैं भी भगवान होने के लिये और तुम भी भगवान होओ। आहाहा! शास्त्र में ऐसी भावना है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

**हे मित्र!...** आहाहा! ले ठीक। इस आत्मा को मित्ररूप से सब-आत्मा को कहते हैं। अन्दर आत्मा भगवान है न। ऊपर का व्यामोह... ऊपर की इस शरीर की रूपवान त्वचा

और चमड़ी को देखकर व्यामोह हो जाता है, उसे छोड़ दे, प्रभु! आहाहा! बाहर के राग के प्रेम में, शुभभाव के प्रेम में जुड़ गया है, प्रभु! छोड़ दे। आहाहा! हे मित्र!... आहाहा! गजब बात की है। कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं, हे महाजस! हे मुनिवर! आहाहा! तूने अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किये, तेरी माता ने रो-रो कर आँसुओं के समुद्र भरे, इतनी बार तूने द्रव्यलिंग धारण किया। अनन्त बार दिगम्बर जैन मुनि हुआ, परन्तु आत्मज्ञान बिना, अंकरहित शून्य हुआ। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अस्तिरूप से तो वस्तु ऐसी है।

हे मित्र! तू भी मेरे उपदेश के सार को सुनकर,... आहाहा! क्या मीठी-मधुर भाषा है! हे मित्र! साधु मित्र बोलते हैं। आहाहा! हे मित्र! हे प्रभु! आहाहा! तू भी मेरे उपदेश के सार को सुनकर,... आहाहा! तुरन्त ही उग्ररूप से... तुरन्त ही उग्ररूप से। आहाहा! वायदा नहीं करना, प्रभु! अभी नहीं, बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... लड़के को व्यवस्थित करूँ, लड़की को व्यवस्थित करूँ। बड़ा व्यापार-धन्धा होवे तो समेटने में देरी लगे, यह रहने दे, बापू! आहाहा! उग्ररूप से—एकदम—शीघ्र। है ?

तुरन्त ही उग्ररूप से इस चैतन्यचमत्कारमात्र के प्रति अपनी वृत्ति कर। आहाहा! बाह्य के संयोग और राग से लेकर सभी चीजें, उनका लक्ष्य छोड़ दे और इस (स्वभाव) पर वृत्ति कर। तेरी वृत्ति सर्वत्र बाहर में है, प्रभु! व्यवहार में, राग में, निमित्त के संयोगों में तू वहाँ झुक गया है। आहाहा! जो तुझमें नहीं है, तुझे लाभदायक नहीं है, उसमें तू झुक गया है। अब ऐसा झुकाव कर, प्रभु! आहाहा! ऐसी बात है। मुनिराज मित्ररूप से कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य के पथानुगामी सब... सब.. टीका अमृतचन्द्राचार्य को अनुसरण कर की है, कितनी ही कुन्दकुन्दाचार्य को अनुसरकर ली है। आहाहा! मुनि कुन्दकुन्दाचार्य के अनुयायी थे। आहाहा!

उग्र पुरुषार्थ द्वारा इस चैतन्यचमत्कारमात्र... यह चैतन्यचमत्कारमात्र वस्तु है। उसमें पुण्य और पाप, दया और दान व्रत, और भक्ति, ऐसे विकल्प-राग-विकार उसमें हैं नहीं। वह तो वीतराग की मूर्ति है, प्रभु! वीतरागमूर्ति न हो तो वीतरागमूर्तिपना आयेगा कहाँ से? आहाहा! और तेरी सत्ता है, तू अस्तिवाला तत्त्व है। अस्तिवाले तत्त्व में स्वभाव है या नहीं? और स्वभाव है तो उसकी हद है या नहीं? तेरा बेहद स्वभाव है, प्रभु! ऐसे बेहद

स्वभाव की ओर वृत्ति कर। आहाहा! यह परिमित और हदवाली चीज़ रागादि का तूने झुकाव किया, उसमें तुझे क्या फलित हुआ? संसार फलित हुआ। आहाहा!

भगवान आत्मा निरुपम है। है? उपदेश के सार को सुनकर, तुरन्त ही... तुरन्त ही। वायदा नहीं। जिसकी रुचि होती है, उसकी रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि अनुयायी वीर्य। जहाँ रुचि होती है, उसके स्थान में पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! ऐसा है। उपदेश किस प्रकार का? वह तो ऐसा समझाये कि रामचन्द्रजी ऐसे थे। दान देते हुए एक गिद्ध पक्षी खड़ा था, गिद्ध पक्षी देख रहा था, वहाँ जातिस्मरण हो गया और गिद्ध पक्षी वहाँ सीताजी के निकट आया। सीताजी वहाँ भागीं.... हो गया। और एकदम जातिस्मरण हुआ। अब ऐसी बात। अब कैसे हुआ, बापू! उसे—गिद्ध पक्षी को सम्यक्त्व ग्रहण कराया था। आहाहा! रामचन्द्रजी ने साथ में रखा था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, हे मित्र! इस चैतन्यचमत्कारमात्र के प्रति। चैतन्यचमत्कारमात्र क्यों कहा? यह चमत्कार है। राग में आये बिना राग का ज्ञान अपने में अपने द्वारा करे, ऐसा चैतन्यचमत्कार है। यह सवेरे आ गया। देखते को देखता है, देखते द्वारा देखता है। आहाहा! पर द्वारा नहीं। आहाहा! यह चेतनास्वभाव और दर्शनस्वभाव में आ गया। चेतन आ गया, दर्शन में आ गया। देखते के हुए के द्वारा देखता है, देखते को देखता है, पर को नहीं। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। बहुत समय सुने, परिचय करे तो धीरे-धीरे बैठे—ऐसी बात है। यह केवलदोम बात है। फेरफार बात है न? इसलिए चैतन्यचमत्कारमात्र... यह चमत्कार है चैतन्य तो, आहाहा! वह स्वयं स्वयं से देखता है और जानता है। अपने को जानता है, पर को नहीं। आहाहा! ऐसी वह चैतन्यचमत्कार वस्तु है। अपने में रहकर पर को स्पर्श किये बिना परसम्बन्धी का ज्ञान अपने द्वारा अपने से, अपने में करता है। आहाहा! ऐसी वह चमत्कारी चीज़ है। चैतन्य ऐसा चमत्कारी प्रभु है। आहाहा!

उसके प्रति अपनी वृत्ति कर। है न? 'श्रुत्वा शीघ्रं कुरु तव मतिं' मति का अर्थ किया है? तेरी मति वहाँ ले। आहाहा! जो मति ऐसी है, उस मति को ऐसे मोड़। आहाहा! जहाँ भगवान पूरा निरुपद्रव पड़ा है। उसकी बातें करने पर भी पूरा न पड़े, ऐसी जो चीज़ है, उस पर वृत्ति कर न, प्रभु! आहाहा! वहाँ तुझे सब मिलेगा। ज्ञान मिलेगा, आनन्द

मिलेगा, शान्ति मिलेगी, निरोगता, स्वच्छता वहाँ मिलेगी। रागरहित निरोगता वहाँ मिलेगी। आहाहा! ऐसे के प्रति तेरी वृत्ति कर। मति को वहाँ झुका। आहाहा!

**मुमुक्षु :** गुलाँट मारना कठिन काम है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह कठिन काम है। बात सत्य है। दूसरा सब ठीक परन्तु पर्याय को झुकाना, वह कहीं कम बात है! वही अनन्त पुरुषार्थ है, वही वस्तु करनी है। दूसरा सब अनन्त बार किया है। आहाहा! जो मति परसन्मुख झुकी हुई है, उसे वहाँ रख। बाद की मति को अन्दर में झुका। आहाहा! वह जहाँ चैतन्यचमत्कार प्रभु विराजता है, भगवत्स्वरूप विराजता है, वहाँ मति को झुका न! ऐसे साधारण राग को, राग के फल यह बाहर की धूल, पैसा-मकान, उसमें अटककर पड़ा, बापू! प्रभु! तू क्या करता है? और यहाँ से कहाँ जायेगा? ऐसी स्थिति में रहकर जायेगा कहाँ? तू तो अनन्त काल रहेगा। अनन्त काल रहेगा, जायेगा कहाँ? आहाहा! रहना तो अनन्त काल है, अनादि है। तो प्रभु! आगे कहाँ जायेगा-रहेगा? स्वसन्मुख झुकाव नहीं करेगा तो फिर कहाँ जायेगा? प्रभु! आहाहा! ऐसी बात है। **प्रति अपनी वृत्ति कर। आहाहा!**

**मुमुक्षु :** जब तक अन्दर झुके नहीं, तब तक बारम्बार अभ्यास करना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभ्यास, अन्दर झुकने का प्रयत्न करना। अन्तर दूसरा सब एक ओर रखना। दूसरा कम आवे, न आवे, कहना न आवे, उसका कुछ नहीं है। यह सवेरे नहीं आया था? मैं मेरे लिये सीखता हूँ, मेरे लिये देखता हूँ, पर के लिये कुछ नहीं है। आहाहा! ऐसा विषय है।

९८वीं गाथा हुई।

## गाथा-९९

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्टिदो ।  
 आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोसरे ॥९९॥  
 ममत्वं परिवर्जयामि निर्ममत्व-मुपस्थितः ।  
 आलम्बनं च मे आत्मा अवशेषं च विसृजामि ॥९९॥

अत्र सकलविभावसन्न्यासविधिः प्रोक्तः । कमनीयकामिनीकाञ्चनप्रभृतिसमस्तपरद्रव्य-  
 गुणपर्यायेषु ममकारं सन्त्यजामि । परमोपेक्षालक्षणलक्षिते निर्ममकारात्मनि आत्मनि स्थित्वा  
 ह्यात्मानमवलम्ब्य च सन्सृतिपुरन्धिकासम्भोगसम्भवसुखदुःखाद्यनेकविभावपरिणतिं परिहरामि ।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह

( शिखरिणी )

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल,  
 प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः ।  
 तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रति-चरित-मेषां हि शरणं,  
 स्वयं विन्दन्त्येते परम-ममृतं तत्र निरताः ॥

तथाहि ह

मैं त्याग ममता, निर्ममत्व स्वरूप में स्थिति कर रहा ।  
 अवलम्ब मेरा आत्मा अवशेष वारण कर रहा ॥९९॥

अन्वयार्थः [ ममत्वं ] मैं ममत्व को [ परिवर्जयामि ] छोड़ता हूँ और [ निर्ममत्वम् ]  
 निर्ममत्व में [ उपस्थितः ] स्थित रहता हूँ; [ आत्मा ] आत्मा [ मे ] मेरा [ आलम्बनं च ]  
 आलम्बन है [ अवशेषं च ] और शेष [ विसृजामि ] मैं छोड़ता हूँ ।

टीका : यहाँ सकल विभाव के संन्यास की ( -त्याग की ) विधि कही है ।

सुन्दर कामिनी, <sup>१</sup>कांचन आदि समस्त परद्रव्य-गुण-पर्यायों के प्रति ममकार को मैं छोड़ता हूँ। परमोपेक्षालक्षण से लक्षित <sup>२</sup>निर्ममकारात्मक आत्मा में स्थित रहकर तथा आत्मा का अवलम्बन लेकर, <sup>३</sup>संसृतिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न सुख-दुःखादि अनेक विभावरूप परिणति को मैं परिहरता हूँ।

इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १०४ वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि:—

( वीरछन्द )

हैं निषिद्ध जब शुभ या अशुभ आचरणरूप सभी दुष्कर्म।  
किन्तु नहीं हैं अशरण मुनिवर क्योंकि वर्तते हैं निष्कर्म॥  
ज्ञान ज्ञान में करे आचरण उन्हें एक यह ज्ञान शरण।  
स्वयं लीन हो उसमें करते परमामृत का आस्वादन॥

[ श्लोकार्थः ] शुभ आचरणरूप कर्म और अशुभ आचरणरूप कर्म—ऐसे समस्त कर्मों का निषेध किया जाने पर और इस प्रकार निष्कर्म अवस्था वर्तने पर, मुनि कहीं अशरण नहीं हैं; ( कारण कि ) जब निष्कर्म अवस्था ( निवृत्ति-अवस्था ) वर्तती है, तब ज्ञान में आचरण करता हुआ—रमण करता हुआ—परिणमन करता हुआ ज्ञान ही उन मुनियों को शरण है; वे उस ज्ञान में लीन होते हुए परम अमृत का स्वयं अनुभवन करते हैं—आस्वादन करते हैं।

गाथा - ९९ पर प्रवचन

( गाथा ) ९९

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।  
आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोसरे ॥९९॥

यह गाथा...

१. कांचन=सुवर्ण; धन।

२. निर्ममकारात्मक=निर्ममत्वमय; निर्ममत्वस्वरूप। ( निर्ममत्व का लक्षण परम उपेक्षा है। )

३. संसृति=संसार।

मैं त्याग ममता, निर्ममत्व स्वरूप में स्थिति कर रहा।

अवलम्ब मेरा आतमा अवशेष वारण कर रहा ॥९९॥

टीका : यहाँ सकल विभाव के संन्यास की ( -त्याग की ) विधि कही है। इस गाथा में, ९९ गाथा। सकल विभाव... कोई भी विकार का विकल्प। चाहे तो तीर्थकरगोत्र बाँधने का विकल्प। आहाहा! सकल विभाव के संन्यास की ( -त्याग की ) विधि कही है। क्योंकि जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधे, उस भाव का नाश करेगा तो वीतराग होगा। और वीतराग होगा, तब वह प्रकृति जो बाँधी है तीर्थकर की, तब उदय में आयेगी। केवल (ज्ञान) होगा, तब उदय में आयेगी। अब उस प्रकृति को भाव से तूने किया क्या? आहाहा! क्या कहा यह? कि जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधता है, वह भाव राग है। राग से प्रकृति बाँधी; अब जब राग का नाश करेगा, तब तुझे केवल (ज्ञान) होगा और तब तेरी वह प्रकृति बाँधी हुई है, तब उदय में आयेगी। आहाहा! तुझे इस शुभभाव ने क्या किया और प्रकृति बाँधी उसने क्या किया? आहाहा! यह बात समझ में आती है?

जिस भाव से बन्ध पड़ा, उस भाव से कोई अबन्ध पर्याय प्रगट नहीं होती। उस भाव का नाश करेगा, तब अबन्ध पर्याय प्रगट होगी और पश्चात् जिस प्रकृति का बन्ध पड़ा है, तब उदय आयेगा। अब केवलज्ञान हुआ, तब जिस भाव से बन्धन हुआ, उस भाव का नाश किया, तब उस प्रकृति का उदय आया। उसने क्या किया? तेरहवें गुणस्थान में तीर्थकरगोत्र प्रकृति का उदय आता है। बाँधती है चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें (गुणस्थान में)। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! यहाँ सकल विभाव के संन्यास की ( -त्याग की ) विधि कही है। विशेष अन्दर कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)